International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 313-317

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(35): 313-317
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 30-06-2020
Accepted: 19-08-2020

डॉ० रूपेन्द्र कुमार
सहायक आचार्यए श्री साहब सिंह महाविद्यालय(सम्बद्ध) डॉ भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगराए उत्तर प्रदेश भारत

Corresponding Author:
डॉ० रूपेन्द्र कुमार
सहायक आचार्यए श्री साहब सिंह महाविद्यालय(सम्बद्ध) डॉ भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगराए उत्तर प्रदेश भारत

ऋग्वेद में वर्णित राजाओं की दानस्तुति

रूपेन्द्र कुमार

प्रस्तावना

1. **प्रमगन्द राजा की दानस्तुति–** प्रमगन्द पद ऋ0 3/5/14 में एक स्थल के नाम से जाना जाता है । इतिहासपक्षियों के कथनानुसार विहार देष में पालवंष में प्रमगन्द नाम का राजा हुआ । जिसको बुद्ध नाम से भी जाना जाता है ।

आचार्य यास्क प्रमगन्द शब्द की निरुक्ति करते हुए लिखता है– ''मगन्दः कुसीदी । मांगदो मामागमिष्यतीत च ददाति तदपत्यं प्रमगन्दोऽत्यन्त कुसी – दिकुलीनः। प्रमदको वा योऽयमेवास्ति लोको न पर इति प्रेत्युः पण्डको वा । पण्डकः पण्डगः प्रतिको वा प्रदियत्याण्डावाण्डावाणी इव वीडयति तस्तम्भे। ''प्रमगन्द''– शब्द ''व्याजखोर'' अथवा अत्यन्त व्याजखोर और कृपण के अर्थ को देने वाला स्पष्ट रूप में प्रकट हो रहा है । क्योंकि ''प्र'' पद अपत्य का वाचक है । मुझको अधिक व्याज आवे इस द्रष्टि से धन देने वाले को ''मगन्द कहा जाता है ।

2. कुरुबकी दानस्तुति – ऋग्वेद 8/4/19 वें [1] मन्त्र में 'कुरुब पद आया है । इस प्रसंग में दूसरा नाम 'कृरुब' का लिया जाता है। इतिहासपक्षी ''कुरुब'' से ऐतिहासिक व्यक्ति विषेष का नाम ग्रहण करते हैं । वे यास्कीय निरुक्त [2] (7/12) का प्रमाण कुरुबो राजा बभूव मानते हैं कुरुब को राजा इसलिए कहा गया है । वह राजगद्दी पर बैठने और यज्ञ आदि कार्यो को करने में 'कुरु' अर्थात ऋत्विजों को प्राप्त करता है ।

3. मुदगल राजा की दानस्तुति – मुदग [3] पंक्षी के आकार का होने से वह मुद्वान होते हुए मुदगल कहलाता है । संग्राम में वह शत्रुओं के मद को नष्ट कर देता है। साथ ही उनके पराक्रम को भी नष्ट कर देता है । इसलिए वह मदनबिल और मुदबिल होते हुए मुदगल है । वैदिक इनडैक्स के अनुसार मुदगल का इतना ही अर्थसमीचीन है ।

4. दाषराज की दानस्थित – ऋग्वेद 1/126/4 में 'चत्वारिषद् दषरथस्य शोणाः में दषरथ का प्रयोग हुआ है । यह पद त्रेतायुगीन रामचन्द्र जी के पिता दषरथ का वाचक नहीं है ।
सायणाचार्य ने इसकी व्याख्या 'दषसख्यारथवतः' के रूप में की है । जिसके भी दषरथ होगें वही दषरथ कहलायेगा । इस प्रकार यहाँ दषराजान या दाषराज्ञ पदों के द्वारा राजाओं की संख्या दष मानी गयी है । उस दाषराज्ञ युद्ध में सम्मिलत होने वाले दस राजाओं के नाम निम्नवत हैं– तुर्वषु, यदु, अनु, द्रहृयु, पुरु, पक्थास, भलानस, अलिनास, विषाणी, तथा षिव । 'सब कुछ आत्मा ही है और कुछ नहीं है।' इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होने पर नानात्व को स्थापित करने वाली अविद्या की निवृत्ति हो जाती है [11]।
छान्दोग्योपनिषद् [12] में बताया गया है कि मन निधन है क्योंकि पुरुष की सम्पूर्ण इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए गए सभी भोग्यरूप विषय मन में ही रखे जाते हैं और वह इन्द्रियों के विषयों में व्यापक है।

ऋ0– 7/83 सूक्त के दाषराज्ञ सम्बन्धी मन्त्र

1. इन्द्रावरुणा वधनाभिर प्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदामावतम ।
ब्रह्णाण्येषां श्रणुतं हविमनि सत्य तृत्सूनाम भवत्पुरोहितः ।। (ऋ0– 7/83/4)
2. इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माधार्न्यो वनुषामरातयः । (7/83/5)
3. युवां हवन्त उभयास आजिविष्वन्द्रं च वस्वो वरूणं च सातये ।
4. यत्र राजभिर्दषभिर्निर्बाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ।। (7/83/6)
5. दषराजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरूणा न युयुधः ।

6. सत्या नृणामद् मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामथवन्देवहूतिषु ।। (ऋ07/83/7)
7. दाषराज्ञे परियन्ताय विष्वतः सुदास इन्द्रावरूणावषिक्षतम् ।
8. ष्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ।। ऋ0(7/83/8)

5. पाकस्थामा – कौरयाण की दानस्तुति

आचार्य यास्क ने निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में वर्णित अनेकार्थक सभी शब्दों की व्याख्या निरुक्त के 4 – 6 अध्यायों में नैगम काण्ड के अन्तर्गत की है । जिसे उन्होंने अनेकार्थक एवं अनवगत संस्कार कहा है [4]। निघण्टु 4/2 में पठित चार पद तौरयाणः कोरयाण अहेयाणः तथा हरयाणः इन पदों में पूर्वपदप्रकृतिस्वर हैं व्याकरण के नियम से वहुब्रीहि समास में पूर्व पद प्रकृति स्वर होता है [5]। इससे स्पष्ट है कि इन पदों में अपत्यवाची प्रत्यय नहीं है [6]। परन्तु कौरयाणः कृतयानः । तौरयाणस्तूर्णयानः । अहृयाणोऽह्रीनयानः । हरयाणो हरमाणयानः [7] को इसी रूप में स्पष्ट करते हुए स्कन्दस्वामी ने लिखा है– 'कौरयाण इत्यनवगतम् कृतयान इत्यवगमः । शत्रून् प्रति कृतमेव यानं येन नित्यं कृतगमन इत्यर्थः। हस्त्य्ष्वरथेत्यादि सांग्रमिकं कृतमाकलिकं प्रयाणभिमुखं यान यस्य । इस प्रकार राजा आदि कोई भी व्यक्ति जिसका यान शत्रुओं के विरूद्ध सदा सन्नद्ध रहता है कौरयाण कहलाता है ।

6. अभ्यवर्ती चायमान की दानस्तुति

ऋग्वेद 6/27/8 का देवता 'अभ्यावर्तिनचषयमानस्य दानस्तुतिः है ।

सायणाचार्य ने चायमान' पद का अर्थ चायमान का पुत्र किया है । ऋ0 1/18/8 में पठित पद के अनुसार चयमान पद आद्युदात्त है । जिसका अर्थ चायमान का पुत्र ही है।

'चायृ' धातु पूजा तथा निषामन अर्थ में पठित है [8]। इससे 'षानचृ' प्रत्यय होकर आद्युदात्त [9] चायमान का अर्थ होगा पूजा करने वाला । अन्तोदात्त 'चायमान' में ताच्छील्य [10] अर्थ में चानष् प्रत्यय है । अतः यह 'चितः [11] से अन्तोदात्त होगा इसका अर्थ है– पूजा करने के स्वभाव वाला ।

इस सूक्त का देवता इन्द्र है । वस्तुतः यहाँ अभ्यावर्ती तथा चायमान ये दोनों पद इन्द्र के ही विषेषण हैं । सूक्त में इन्द्र का वर्णन पराक्रमी तथा दानी के रूप में किया गया है। अर्थात पराक्रमी तथा दानी राजा का सामान्य रूप में यह वर्णन है किसी चायमान नामक राजा का वर्णन नहीं ।

7. देवापि, शन्तुन की दान स्तुति – 'देवापि' पद की व्याख्या करते हुए [ख12] यास्क ने लिखा है– कि देवों के ज्ञान अथवा स्तुति करने से सम्बद्ध पदार्थ ''देवापि'' हैं ।

आचार्य दुर्ग के अनुसार–''देवापि'' का अर्थ पार्थिव–अग्नि है।

आचार्य स्कन्दस्वामी ''देवापि'' की व्याख्या करते हुए कहते हैं– कि [13] –ऋष्टि नाम शक्ति का है उससे युक्त मरुतों की सेना ऋष्टिमन्त है । मध्यम से उत्पन्न होने के कारण ''देवापि'' विद्युत है और शन्तुन वृष्टिलक्षण उदक हैं ।

आचार्य दुर्ग ने आर्ष्टिषेण सम्बन्धी प्रमाण में शन्तनु का अर्थ यजमान किया है । यास्क ने [14] शन्तनु की निरुक्ति करते हुए लिखा है । कि शरीर के लिए कल्याण करने वाला अथवा उसके शरीर के लिए कल्याण हो ऐसा पदार्थ शन्तुन है ।

8. विभिन्दु की दानस्तुति – ऋग्वेद – 8/2/41 के अनुसार कोई शत्रु भेदक राजा विभिन्दु कहला सकता है । उसके दान की प्रषंसा भी की गयी है । न कि विभिन्दु नामक राजा के दान की । इसका देवता 'विभिन्दोर्दान स्तुतिः' माना है । ऋ0 1/116/20 में विभिन्दु को अष्विनौ के रथ का विशेषण माना है । इसी आधार पर यहाँ सायणाचार्य ने इसका अर्थ– 'सर्वस्यभेदके नात्मीयेन रथे न [15] किया है इसके अतिरिक्त विभिन्दु का इतिहास कहीं उपलब्ध नहीं है ।।

9. त्रसदस्यु की दानस्तुति –

अदान्मे पौरुकुत्स्य प०चाषतं त्रसदस्युर्वधूनाम्
मंहिष्ठो अर्यः सत्यपतिः। (ऋ0 8/19/36)

त्रसदस्यु राजा द्वारा दिये गये दान के सन्दर्भ में उपर्युक्त मन्त्र स्पष्ट है– जिसमें कहा गया है कि पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु ने पॉच सौ वधुएं प्रदान की । इस मन्त्र की ऐसी स्थिति में इतिहास पक्ष को स्वीकार करने में ही सौकर्म प्रतीत होता है ।

इस उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार भी की जा सकती है ।– सैनिक कह रहा है कि पौरुकुत्स्य अर्थात वज्र के समान सुद्रढ शस्त्रों वाले राजा का सेनापति जो कि त्रसदस्यु = दस्युओं को त्रसित करने वाला है उसने (वधूनाम[16] प×चाशत) युद्धकार्य को भली भॉति वहन करने वाले पचास वीर मुझे युद्धार्थ प्रदान किये हैं।

10. प्रायोगी आसब की दानस्तुति – ऋ0 8/1/30 – 34

प्रायोगी आसब की दानस्तुति का विवरण ऋग्वेद के पॉच मन्त्रों में सन्नहित है । जिसमें मन्त्र 30–32 के ऋषि मेधातिथि, मेध्यातिथी, काण्वौ, तथा मन्त्र संख्या 33 के आसÂप्लायोगिः एवं मन्त्र 34 का ऋषि शश्वत्याबिरस्यासबस्य पत्नी को माना गया है । इसके अतिरिक्त 30–33 मन्त्र का देवता 'आसबस्य दानस्तुति को माना गया है । जवकि 34वे मन्त्र का देवता आसब को माना गया है ।

सायणाचार्य के अनुसार – राजर्षि आसब मेघातिथि को प्रचुर धन देकर अपनी स्तुति कराने के लिए प्रेरित करता है । इसका विवरण ऋग्वेद भाष्य के मन्त्र संख्या 30 में दिया गया है । इसी प्रकार वेइटमाधव ने 'अत्र कात्यायन' कहकर लिखा है कि प्रायोगी आसब कभी स्त्री होकर पुनः पुरुष हो गया उसने मेध्यातिथि को दान देकर इन चार ऋचाओं (30–33) से अपनी स्तुति की । ऋग्वेद के 34 वें मन्त्र में आसब की पत्नी शष्वती ने उसकी स्तुति की ।

सायणाचार्य ने मन्त्र 30 में पठित निदताष्व [16]] प्रपथी [18], तथा परमज्याः [19] को आसब का विशेषण मान कर ही अर्थ किये हैं । उनके अनुसार अपनी शक्ति से शत्रुओं के अष्वों को निन्दित करने वाला ही अथवा उत्कृष्ट आयुध वाला परमज्याः है ।

वैइट के अनुसार – निन्दताष्व, प्रपथी, परमाज्या को राजा माना है । क्योंकि वे दरिद्रो को धन देते हैं [20]।

उक्त प्रमाणों को देखते हुए सूक्त के मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है ।

1. स्तुहि स्तुहीदेते घा ते महिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्दताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ।।
(मैत्रायणीसंहिता 1/8/1/30)

अर्थ – हे (मेध्यातिथे) पवित्र विचारों वाले षिष्य। तू अपने आचार्य आसब [21] प्रायोगि की पुनः पुनः स्तुति कर (तेएते) ये तुम्हारी स्तोत्र (मद्योनाम) विद्यारूपी धन वालों के मध्य (मघस्य) [22] विद्या को सभी धनों में श्रेष्ठ कहा गया है [23]। विद्यारूपी धन को धन वालों के मध्य (मध्स्य) विद्या को सभी धनों में श्रेष्ठ कहा गया है । विद्यारूपी धन को (महिष्ठास) देने वाले है। यह आसब आचार्य (निन्दिताष्व) [24] दूसरों की इन्द्रियों रूपी अष्वों से श्रेष्ठ इन्द्रियों वाला (प्रपथी) सन्मार्गवर्ती (परमज्याः) अपने विरोधियों को शास्त्रार्थ में जीतने वाला है।

2. आ यदष्वान् वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रूहम।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्धः पषुः।। (मैत्रा0 संहिता – 8/1/31)

अर्थ – मेधातिथि कहते हैं– कि (यत) जब (वनन्वतः) ज्ञान का सम्यक् सेवन करने वाले आचार्य के पास (अष्वान) आशुगामी तथा इन्द्रियों रूपी अष्वों को (रथे) अपने शरीर रूपी रथ में (आरुहम) [25]

संयुक्त किया अर्थात सावधान होकर विद्या का अध्ययन किया तब जो (याद्धः) [26] प्रयत्नवान आचार्य का षिष्य (पषुः) [27] सूक्ष्म अर्थो को देखने वाला षिष्य है वह कमनीय श्रेष्ठ (वसुनः) विद्यारूपी धन को (चिकेतति) जान लेता है । सावधान तथा श्रद्धा युक्त होने पर ही षिष्य के समाने विद्या के रहस्य प्रकट होते हैं ।

3. या ऋज्रा मह्मं मामहे सह त्वचा हिरण्यया।
एष विश्वान्थ्यस्तु शोभगासबस्य स्वनद्रथः।।
(मै0 संहिता– 8/1/32)

अर्थ – जो आचार्य (मह्यम) मेरे लिए (हिरण्यया) हितकारकः रमणीय अथवा ज्योतिर्मय [28] तथा (त्वचा) [29] संवृत करने वाली ज्ञानज्योति के साथ (ऋज्रा) [30] गतिमान ज्ञान को (मह्यम) मेरे लिए (मामहे) देता [31] है । ऋजु का सरल अर्थ इस प्रकार है– कि आचार्य षिष्य को उलझन रहित वोधगम्य रीति से ज्ञान देता है । (आसबस्य) विद्यासक्त – आचार्य का (एषः) यह (स्वनद्रथः) शब्दायमान रथ अर्थात् ज्ञानोपदेष्टा शरीर (विष्वानि) समस्त (सौभगानि) सौभाग्यों सुखों का (अभ्यस्तु) अभ्यास उपभोग करें ।
सायणचार्य ने भी 'स्ववद्रथः का अर्थ 'षब्दायमान रथ' किया है । किन्तु वेइट ने 'स्वनद्रथो नाम कष्चिद्राजा 'लिखा है। जो अयुक्त है ।

4. अथ प्लायोगिरति दासदन्यानासंगो अग्नेदषभिः सहसैः ।
अघोक्षणो दाष्मध्यं रू षन्तो नला इव सरसो निरतिष्ठन ।।
(ऋ08/1/33)

अर्थ – दत्तावधान आचार्य दषगुणित सहस्र रूपों [32] में अन्यो से बढकर मुझे ज्ञान प्रदान करता है । तदनन्तर सिंचन में समर्थ दषो ऐन्द्रियिक शाक्तियॉ प्रदीप्त होते हुए मेरे लिए तालाब के सकण्डों की भॉति स्थायी रूप में मुझे प्राप्त हुई ।
आचार्य के द्वारा दिया गया ज्ञान दषों इन्द्रियों की शक्तियो को सहस्रगुणित कर होता है । तथा अन्तस को सिंचिंत करता है।
पं0 भगवतदत्त ने मस्तिष्क के द्रवकोष को आन्तरिक तालाब माना है । वहीं से ये ऐन्द्रियिक शक्तियॉ निकलती हैं [33]।
वेइट का भाष्य देखने से प्रतीत होता है । कि उपर्युक्त चारों मन्त्रों की व्याख्या विजिगीषु राजा के पक्ष में भी हो सकती है।

यथा – मन्त्र प्लायोगि प्रजा [34] के साथ प्रगाढ सम्बन्ध रखने वाले तथा आसब [35] प्रजा रक्षण में पूर्ण रूप में लगा हुआ राजा । मेध्यातिथि [36] अर्थात पवित्र तथा गतिषील सैनिकों से युक्त सेनापति प्रजा से कहता है । कि राजा का स्तवन– आदर करो क्योंकि यह राजा धनों का दाता है । तथा यह आसब राजा शत्रु की शक्तियों का अभिभव करने वाला श्रेष्ठ मार्ग वाला तथा (परमज्याः) [37] उत्कृष्ट शत्रुओं को भी मारने वाला है ।।

मन्त्र –5 अन्वस्य स्थूरं ददृषे पुरास्तादनस्थ असावरम्वमाणः। शष्वती नार्यभिचक्ष्याह सुमद्रमर्य भोजनं विभर्षि ।। (ऋ0 8/1/34)

इस मन्त्र की व्याख्या में वेंइट [38] ने लिखा है कि इस राजा का स्थूल उदर सामने दिखलायी देता है सायणाचार्य ने इसकी व्याख्या से पूर्व लिखा है । कि कभी दैवषाप से आसब राजा नपुंसक हो गया । उसकी शष्वती नामक पत्नी ने दुःखी होकर महान तप किया । उसकी तपस्या से आसब को पुंस्त्व की प्राप्ति हो गयी । इसके वाद सायण ने मन्त्र का जो अर्थ दिया है उसका भाव यह है कि– शष्वती कह रही है । कि आसब का यह स्थूल = बढा हुआ प्रजनन अंग जो कि हडड़ी रहित है तथा स्थूल होने के कारण नीचे लटक रहा हैं । वह मुझे द्रष्टिगोचर हो रहा है । यह आसब भोजन अर्थात् भोग के साधन इस प्रजनन अंग को धारण कर रहा है । स्पष्ट है कि यह अर्थ अति गृाम्य तथा अश्लील तो है ही साथ ही इसमें खींचतान भी है । कि भोजन का अर्थ भोग का साधन जननेन्द्रिया करना पडा है ।

11. पैजवन सुदास की दानस्तुति–
पैजवन सुदास की दान स्तुति का वर्णन आधिदैविक एवं आधिभौतिक दोनों पक्षों में किया गया है । जिसके स्पष्टीकरण के लिए इतिहासपरक व्याख्यायें प्रस्तुत की जा रही हैं ।

1. द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्धा रथा वधुमन्ता सुदासः।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ।।

व्याख्या – देववान राजा के पौत्र तथा पिजवन के पुत्र सुदास राजा की दो सौ गौओं तथा वधुओं से युक्त दो रथों के रूप में दान की स्तुति करता हुआ मैं योग्य वसिष्ठ यज्ञग्रह में होता की तरह जाता हूॅ।

2. चत्वारो मा पैजवनस्य दाना स्माद्दिष्टयः कषनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति।।

व्याख्या – पिजवन के पुत्र सुदास् के श्रद्धा आदि से युक्त तथा सुवर्णालड्कार वाले, ऋजुगामी तथा पृथिवी में स्थित दान में दिये जाने वाले चार अष्व पुत्र के समान पालिनीय मुझ वसिष्ठ को मेरे पुत्र के यष तथा अन्न के लिए धारण करते हैं ।

3. यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णे –शीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नियुध्यामधिमाषिादभीके ।।

व्याख्या –जिस सुदास की कीर्ति विस्तीर्ण द्युलोक तथा पृथ्वीलोक के मध्य विद्यमान है । जिस सुदास् ने श्रेष्ठ व्यक्तियों के लिए धन दिया है । उस सुदास को मानो लोक इन्द्र के समान पूजते हैं । उसने वहती हुयी नदी के समीप युध्यामधि नामक असुर का वध किया।

4. इमे नरो मरुत सष्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाषं क्षत्रमजरं दुरोयुः।। (ऋ0 7/18/22–25)
व्याख्या– हे नायक मरुतो ! तुम सुदास का इसके पिता दिवोदास के समान ही सम्मान करो इस सुदास् के गृह की रक्षा करो । इस सुदास की शक्ति अविनष्वर होवे ।
इस प्रकार इन मन्त्रों के आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि सुदास ने चार घोड़े दो सौ गौवें तथा वधुओं से युक्त दो रथ दान में दिये ।

आधिदैविक पक्ष में– सुदास का अर्थ जलदाता मेघ किया है । तथा तेजस जलों के मिश्रण से उत्पन्न मेघ ही पैजवन माना गया है ।

आधिभौतिक पक्ष में– सुदास का अर्थ उत्तमदान देने वाला माना गया है । आचार्य यास्क ने इस दोनों पक्षों के लिए ही 'पैजवन' स्पर्धनीय जवो मिश्रीभावगतिर्वा लिखा है ।
इस प्रकार आधिदैविक पक्ष में उपर्युक्त मन्त्रों की व्याख्या निम्नवत होगीं ।

1. प्रथम मन्त्र में प्रयुक्त 'देववतः' पद की व्याख्या – देववान राजा का पौत्र सुदास है। इस रूप में की गयी है । इसके अतिरिक्त प्रकाषवान सूर्य का पौत्र मेघ है । जो कि मेघ सुदास् = जलदाता बनता है । [39, ज्योति तथा जलों के मिश्रण का नाम ही पिजवन है [40]। इस प्रकार सूर्य का पुत्र पिजवन तथा पिजवन का पुत्र जलप्रद मेघ सुदास् है ।

2. पैजवन मिश्रणभाव के दाता – अग्नि, सूर्य, वायु, तथा विद्युत। ये चार ही जल उत्पत्ति के कारण हैं [41] ये ही (स्मदिदष्यः) [42] प्रषंसित अतिसर्जन वाले तथा हिरण्यस्वरूप वाले हैं [43] इन्हैं ऋजुगामी [44] भी कहा गया है। इसमें से सूर्य सुविस्तुत [45, द्युलोक में स्थित है तथा विद्युत विस्तृत अन्तरिक्ष में स्थित हैं तथा अग्नि पृथ्वी पर स्थित है । ये मुझ (सुदासःतोकम्) मेघ के पुत्र जल को (तोकाय) [46] प्रजाजन के पालन के लिए (श्रवसे) [47] अन्न के लिए वहन्ति धारण करते हैं ।
3. तृतीय मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की गयी है– कि जिस मेघ का यष विस्तृत द्युलोक तथा पृथ्वी लोक के मध्य विद्यमान है जल का प्रदाता जो मेघ उत्तम – उत्तम [48] सुखों के लिए अपने जल को भूमि के लिए प्राप्त कराता है । तथा सातों लोक ही सूर्य के समान इस मेघ की सभी स्तुति करते हैं । यह मेघ इस इन्द्र – वृत्र [49] के संग्राम में गर्जन करने वाले [50] मेघ को सूर्य नष्ट कर देता है ।
4. चतुर्थ मन्त्र में कहा गया है– हे बादलो को इधर – उधर ले जाने वाले वायुओं तुम प्रकाष देने वाले [51] सूर्य मेघ को पूर्ण करने वाले उसके पालक पिता के समान सेवन करो। पिजवन के पुत्र मेघ के स्थान [52] की रक्षा करो ।

जिससे इस मेघ का जल [53] अविनाषी जीर्ण न होने योग्य तथा सेवन करने के लिए मनोहर होवें । इस प्रकार स्पष्ट है कि यहॉ किसी भी प्रकार के इतिहास अथवा सुदास नामक ऐतिहासिक राजा के दान का वर्णन नहीं है। केवल कल्पनामात्र हैं ।

सन्दर्भ

1. स्थूरं राधः शताष्वं कुरुबस्य दिविष्टिषु । राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वषेष्वमन्म हि ।। (ऋ0 8/4/19)
2. कृरुबो राजा बभूव कुरु गमनाद्वा कुलगमनाद्वा । (नि0 7/12/)
3. मुदगः पक्षिविषेषः (षब्दकल्पद्रुम)
4. अथ यान्यनेकार्थान्येकशन्दानि तान्यतोऽनुक्रमिष्यामः अनवगत संस्कारॉष्च निगमान् । (निरुक्त 4/1)
5. वहुब्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् । (अष्टाध्यायी 6/2/1)
6. अन्तोदातष्च । (अष्टाध्यायी 3/1/3)
7. निरुक्त– 5/14
8. चायृ पूजानिषामनयोः (भ्वादि)
9. तास्यनुदात्तेन्डिददु0– (अ0 6/1/180)
10. ताच्छील्यववचन शक्तिषु चानष् (अष्टाध्यायी 3/2/129)
11. अष्टाध्यायी 6/1/163
12. देवापि देंवानामाप्स्या स्तुत्या च प्रदानेन– नि0 2/11
13. ऋष्टयः शक्तयः तत्प्रधाना सेना मरुताम् । यस्या अंसेषु वा ऋष्टयः। विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तः मध्यमप्रभवत्वाद् देवापिर्विद्युत् शन्तनुरुदकं वृष्टिलक्षणम् ।
14. षन्तनोऽस्त्विति वा शमस्यै तन्वा अस्त्विति वा (नि0 2/12।।
15. विभिन्दुना नासत्या रथेन विपर्वतान्0 । ऋ0 1/116/20
16. वहेर्धष्च । दष0 उणा0 1/116 इस सूत्र में 'वह' धातु से 'ऊ' प्रत्यय तथा हकार का धकारादेष होकर वधू पद सिद्ध होता है । वहति युद्धकार्यमिति वधूः । अत्राह यास्कः– अथात्यन्तव्यापत्तिर्भवति। ओधो मेधो नाधो गाधो वधूर्मध्विति । (नि0 2/2)
17. यस्य वीर्येण परेषामष्वा निन्दिताः कुत्सिता भवन्ति तादृषः। (सायण)
18. प्रकृष्टः पन्था प्रयथ। तद्वान् सन्मार्ग वर्त्तीत्यर्थः। (तत्रैव)
19. परमज्य उत्कृष्टज्यः। उत्कृष्टायुध इत्यर्थः। यहॉ परमानुत्कृष्टा०छत्रू०िजनति हिनस्तीर्ति परमज्या (तत्रैव)
20. निन्दिताष्वः प्रपथी, परमज्याः इति त्रयो राजानो मधं प्रयच्दन्ति ।
21. आसमन्तात् सटः षिष्याणां येन सह स आचार्यः ।
22. मधमिति धननामधेयम् मंहतेदनिकर्मणः । नि0 1/6
23. विद्याधन सर्वधन प्रधानम्। सुभाषित
24. यस्क वीर्येण परेषामष्वाः निन्दिताः कुत्सिताः भवन्ति तादृषः। (सायण)
25. आरुहम् – आरोहयम् । (सायण)
26. यती प्रयत्ने (भा0) धातो बहिु लादौणादिकः उप्रत्ययस्तकारस्य च दकारः– यदुः यत्नषीलो मनुष्यः ।
27. पषुः पष्यतेः। सूक्ष्मस्य द्रष्टा । (सायण)
28. ज्योतिर्हि हिरण्यम् । (षत0 4/3/1/11) तेजो वै हिरण्यम् । (तै0 1/8/9/1)
29. त्वच संवरणे (तुरादि)
30. ऋज्रा गमनषीलानि। (सायण)
31. ऋजेन्द्राग्रवज्रविप्र0 अर्जति गच्छति तिष्ठति वा स ऋजुः। (उणा0 2/29)
32. मंहति दानकर्मा । निघु0 3/20
33. दषगुणितैः सहस्रैः। (सायण)
34. यह आन्तरिक तालाब स्थूल दृष्टि से मस्तिष्क का द्रव कोष (अमदजतपबसमेद्ध है जहॉ से किये एन्द्रियिक शक्तियॉ निकलती और समाविष्ट होती है ।(भगवदत्त, वैदिक ऋषि, गु0 कु0 कॉगडी वि0 वि0 1965,पृ0 252 प्रकृटो योगः प्रजया यह यस्य स राजा (तत्रैव)।
35. प्रजारक्षणे आसमन्तादासज्यते नियुक्तो भवतीत्यासबः। (तत्रैव)
36. मेध्यैरतिथिभिः सततगमनषीलैः सैनिकैर्युक्तः। (तत्रैव)
37. परमानुत्कृष्ट×छत्रून जिनाति हिरस्तीति परमज्याः (सायण)
38. अनुददृषे अस्यस्थूलमुदरं पुरस्तात् । स्त्रियो हि सन्नतमध्या भवन्ति पुमांसस्तु स्थूलमध्याः (वेइटभाष्य)
39. अपां च ज्योतिष्च व मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। (निरुक्त– 2/16)
40. पिजवनः मिश्रीभावगतिर्वा।(निरुक्त0– 2/24)
41. वायोरग्निः अग्नेरापः। (तत्रैव)
42. प्रषस्तातिसर्जनाः (सायण)
43. कृषनमिति हिरययनाम। (निघ0 1/2)
44. दुर्गतौ सत्यामृजुगामिनः (सायण)
45. प्रथनात् पृथिवी (निरुक्त 1/14)
46. तुजिपालने (भ्वादि)
47. श्रवः अन्ननाम। निध0 2/7
48. षिरोवहुदुत्तमायोत्तमाय सुखाय (दया0)
49. अभीके संग्रामनाम (निध0 2/17)
50. अमगत्यादिषु (भ्वादिगण)
51. पृपालनपूरणयोः (क्रयादि) यः पालयति पूरयति च सः पिता। सूर्य ही भूमि से जल लाकर मेघ को देता है ।
52. केतं मन्त्रं गृहं व रक्षत (सायण)
53. क्षत्रम् उदकनाम निध0 1/1

सन्दर्भ

1. अष्टाध्यायी, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलालकपूर ट्रस्ट सोनीपत, हरियाणा,1977ई
2. अथर्ववेद संहिता क्षेमकरणदास त्रिवेदीकृत,दयानन्द संस्थान करोलवाग,2031 वि0स0,(नई – दिल्ली)
3. आचार्य सायण और स्वामी, डॉ रामप्रकाषवर्णी, परिमलपिब्लकेषन्स,27/28,2008ई0,दयानन्द की ऋग्वेदादि शक्तिनगर (दिल्ली) भाष्य भूमिकाऍ
4. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र,हरदत्त मिश्र,अनाकुला टीला चौखम्बा संस्कृत,1928 ई0,सीरीज वाराणसी
5. आर्षज्योति,डा0 रामनाथ वेदालंकार,श्रीघूड़मल प्रहलादकुमार आर्ष,2008 ई0 धर्मार्थन्यास वनियापाडा हिण्डौनसिटी
6. उणादिकोषः (पंचपादी),व्या0 स्वामी दयानन्द सरस्वती,वैदिकयन्त्रालय अजमेर,2033 वि0 सं0(राजस्थान)
7. उणादिकोषः (दषपादी),सं0पं0 युधिष्ठिर मीमांसक,रा0ला0क0 ट्रस्ट,1942 ई0 सेनीपत(हरयाणा)

8. ऐतरेय – ब्राह्मण सुखदावृत्ति,अनन्तकृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम,1931 ई0
9. ऋक्प्रातिषाख्यम् उवट,सं0 मंगलदेव शास्त्री,चौखम्बा संस्कृत सीरीज,1953 ई0,भाष्यम वाराणसी
10. ऋक्सर्वानुक्रमणी कात्यायन,सं0 डॉ0विजयपाल विद्यावारिधि, रामलालकपूरट्रस्टवहालगढ़, 1985 ई0 सेनीपत,(हरयाणा)
11. ऋग्वेद, महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत भाष्य,सार्वदेषिक आर्य प्रतिनिधिसभा 1972 ई0 रामलीला – मैदान दिल्ली
12. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका,स्वामी दयानन्द,रामलाल कपूर ट्रस्ट,2010 ई0,सोनीपत (हरयाणा)
13. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका,सायण सं0 डॉ वीरेन्द्र कुमार वर्मा,चौखम्वा प्रकाषन वाराणसी 2007 ई0
14. ऋग्वेद मणिमण्डलसूक्त,स्वामी समर्यणानन्द, समर्पण शोध संस्थान साहिवावाद,2035 वि0सं0
15. काषिका.वामन जयादित्य,सं0 सोभित मिश्र,चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय वनारस,1952 ई0
16. गुरूकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगडी विष्वविद्यालय हरिद्वार
17. तैत्तिरीय संहिता,आनन्दाश्रम,पूना संस्करण,2001 ई0
18. तैत्तिरीयोपनिषद,वासुदेव शर्मा पणषीकर,चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,1991 ई0
19. तैत्तिरीय आरण्यक,आनन्दाश्रम संस्करण,पूना,2001 ई0
20. धातुपाठ,पाणिनि,रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत हरयाणा 1977 ई0
21. नाटय षास्त्रम्, भरत मुनि, चौखम्बा प्रकाषन वाराणसी,1977 ई0
22. निघण्टु, यास्क, वैदिक यन्त्रालय,1957 ई0 अजमेर राजस्थान
23. निरुक्त, आचार्य यास्क, वैदिक यन्त्रालय अजमेर,1957 ई0
24. निरुक्त स्कन्दभाष्यम्, सं0 प्रो0 ज्ञानप्रकाष शास्त्री, परिमाण पब्लिकेषन्स 27/28,2009 ई0 शक्तिनगर दिल्ली
25. निरुक्तालोचन ,पं0 सत्यव्रत सामश्रमी,कलकत्ता
26. निरुक्त मीमांसा,पं0 षिवनारायण शास्त्री,श्रीरामेष्वर सिंह इन्डोलॉजिकल 2026 वि0स0 वुक हाउस वाराणसी
27. पाणिनीयषिक्षा,चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
28. प्राचीन भारत का इतिहास,पं0 भगवद् दत्त,लाहौर संस्करण,1940 ई0
29. बृहददेवता, आचार्य शौनक सं0 –1940 ई0,ए0 ए0 मैक्डोनल
30. महाभाष्यम, पंतजलि, हरियाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर,1975 ई0
31. मनुस्मृति–मनु, कुल्लक भट्टीय टीका,प्राणजीवन शर्मा, बम्वई,1913 ई0
32. यजुर्वेदः,स्वा0 दयानन्द भाष्य,आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर,2016 वि0 सं0
33. यजुर्वेद भाष्य विवरण,पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु,रामलाल कपूर ट्रस्ट गुरवाजार अमृतसर 1956 ई0
34. वाजसनेयी प्रातिषाख्यम्,कात्यायन,उवटभाष्य वैकंटराम शर्मा मद्रास,1934 ई0
35. वेदवाणी – मासिक पत्रिका,सं0 आचार्य सुरेन्द्र,रामलाल कपूर ट्रस्ट रेवली जिला,2010 ई0 सोनीपत (राजस्थान)
36. वेदान्त दर्षन,व्यासर्षि, सं0 विन्ध्येष्वरी,चौखम्बा संस्कृत सीरीज – वाराणसी,1992 ई0,प्रसाद द्विवेदी,
37. वेदों का यथार्थ स्वरूप, पं0 धर्मदेव विद्यामार्तण्ड,समर्पण शोध संस्थान राजेन्द्र नगर,52 वि0 सं0,साहिवावाद
38. वेदों की वर्णन शैलियाँ,डॉ रामनाथ वेदालंकार,श्रद्धानन्द शोधसंस्थान गु0 कागड़ी,1976 ई0
39. वैदिक कोष,पं0 हंसराज,राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,2001 ई0,जनकपुरी (दिल्ली)
40. वैदिक वाङमय का इतिहास,पं0 भगवद्दत्त,प्रवण प्रकाशन 1/8 पंजावीवाग नई–दिल्ली 1978 ई0
41. वैदिकइतिहास निर्णय, पं0 षिवषंकर शर्मा काव्यतीर्थ, वैदिकपुस्तकालय सी0 के0 61/61,1950ई0 कर्णघण्टा वाराणसी
42. वैदिक इतिहास विमर्ष,आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री,आर्य साहित्य मण्डल लिमटेड अजमेर 1961 ई0
43. वैदिक इतिहास विमर्ष,डॉ0 रघुवीर वेदालंकार,प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान बी0 266 2005 ई0 सरस्वतीविहार दिल्ली
44. वैदिक माइयोलॉजी, ए0 ए0 मैक्डोनल, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,1984 ई0
45. वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, पं0 म0 युधिष्ठिर मीमांसक,रा0 ला0 क0 ट्रस्ट सोनीपत (हरयाणा)
46. शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्य,'नागप्रकाषन' – (दिल्ली),1990 ई0
47. सामवेद संहिता,वैदिक यंन्त्रालय – अजमेर 2065 वि0सं0,(राजस्थान
48. सत्यार्थप्रकाष,स्वामीदयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय – अजमेर,2065 वि0स0,(राजस्थान)